लेख

देहली को बनाने वाली औरतें

रख़्शंदा जलील

एक देहली वह है जो हमें दिखाई देती है अपनी पूरी चमक और आबो-ताब के साथ और एक देहली ऐसी है जो होते हुए भी हमें दिखाई नहीं देती। वह है गुज़रे दौर की देहली जिसे मैं अदृश्य देहली कहती हूं।

हमें दिखाई देने वाली देहली की भीड़ भरी सड़कों की आपा-धापी, ऊंची-ऊंची इमारतों की चकाचौंध के आस-पास ही अंधेरे में डूबे, ख़ामोश खंडहरात, मसजिदें, मक़बरे और कितनी ही ऐसी नायाब इमारतें हैं जिनके पास से गुज़रते हुए भी हम उन पर एक नज़र नहीं डालते और न कभी उनकी सार-संभाल करते हैं। हां, अगर कुछ करते हैं तो वह है उनकी तबाही।

इसी अदृश्य देहली को बनाने में कितनी ही औरतों का हाथ रहा है। आज हम उसी को जानने की कोशिश करेंगे।

यह सही है कि ज़्यादातर नामचीन ऐतिहासिक इमारतों के साथ मर्दों का नाम जुड़ा है। वज़ीरों, बादशाहों का नाम जुड़ा है लेकिन देहली की खूबसूरती में इज़ाफ़ा करने में औरतों ने भी छोटा सही लेकिन अहम किरदार निभाया है। उनके बनवाए मकबरे, मसजिदें, सरायखाने आज भी इसकी गवाही देते हैं।

सबसे पहले मैं हौज़ ख़ास की *नीली मसजिद* की बात करूंगी, जिसे सन् 1505-6 में कसुम भील ने बनवाया था जो उस इलाके के आला ओहदेदार ख़वास ख़ान के बेटे की दाई थीं। इस छोटी पर बहुत खूबसूरत इमारत में तीन कक्ष हैं और बीच में छोटा सा गुम्बद। गुम्बद के चारों ओर चमकीले नीले रंग की चीनी मिट्टी की खपरैलें लगी हैं जिन्होंने इस मसजिद को नाम दिया। देख-रेख की कमी के चलते अब बमुश्किल दर्जन भर खपरैलें बची हैं लेकिन वे यह साबित करती हैं कि किसी दौर में इसकी सुन्दरता क्या रही होगी।

औरतों के हुक्म पर या उनकी निगहबानी में इमारतें बनने के सिलसिले को मुग़ल काल में प्रोत्साहन मिला। इस दौर की मुख्य इमारतों में अहमद शाह की मां कुदसिया बेगम की जोरबाग़ के पास बनवाई हुई *दरगाह शाहे मरदान* और उसके आस-पास की इमारतें हैं। आज भी यह इलाका शिया सम्प्रदाय के लिए पवित्र स्थान है। इस्तेमाल में आने की वजह से इनकी देख-रेख और हालत ठीक है। आई.एस. बी.टी. के पास बना *कुदसिया बाग* भी उन्हीं का बनवाया हुआ है।

देहली की कुछ और मशहूर इमारतों में से ख़ास है *रोशनआरा बाग* जिसे शहज़ादी रोशनआरा ने बनवाया था। हुमांयू के मकबरे के पास *नूर हलीमा का बाग* और फ़क्र-ए-जहां बेगम की याद में बनवाई गई *फक्रुल मसजिद* भी अहम है।

कई मुग़ल शहज़ादियों ने छोटी-छोटी लेकिन बेइन्तिहा खूबसूरत मसजिदें बनवाईं जैसे गुम्बद पर काली और सफेद

हुमांयू का मक़बरा, नई दिल्ली

फ़तेहपुरी मस्जिद, दिल्ली

धारियों वाली *ज़ैनातुल या धारा मसजिद*। इसे औरंगज़ेब की एक बेटी ज़ीनत-उन-निसा ने बनवाया था। चांदनी चौक के एक छोर पर बनी *फतहपुरी मसजिद* को बनवाने वाली भी शाहजहां की एक बेगम थीं।

यहां मथुरा रोड बनी *ख़ैरुल मसजिद* और मदरसे का ज़िक्र करना बहुत ज़रूरी है। 1561-62 में अकबर की दाई मां और शाही दरबार में ताक़त रखने वाली माहम अनगा ने इन इमारतों को बनवाया था। दरअसल में यह मसजिद देहली का एक छिपा हुआ नायाब हीरा है। हालांकि इसके चारों ओर की दीवार टूट-फूट रही है लेकिन लाल पत्थर से बने मेहराबदार अज़ीम दरवाज़ों पर पुरानी कारीगरी की झलक आज भी दिखाई देती है। चूंकि कुछ नमाज़ी आज भी यहां आते हैं इसलिए थोड़ी देखभाल और साफ़ सफाई हो जाती है। इससे जुड़े मदरसे की हालत खराब है।

माहम अनगा का बनवाया मेहरोली में अपने बेटे *आदम ख़ान का मकबरा* लोधी वास्तुकला का एक नमूना है जिसमें चारों तरफ बरामदे हैं। माहम अनगा की कब्र भी इसी इमारत के एक हिस्से में है। मेहरोली की अन्य पुरानी यादगारों की तरह यह मक़बरा भी लोगों की असभ्यता और बर्बरता का शिकार है। आज इसे लोग *भूल भुलैया* के नाम से जानते हैं।

देहली का एक बहुत खूबसूरत और नामचीन *मक़बरा हुमांयू* का है जिसे उनकी बेवा बेगम और अकबर की मां हमीदा बानू बेगम उर्फ़ मरियम मक्कानी ने बनवाया था। यह मुग़ल वास्तुकला की एक आलीशान मिसाल है। बगीचे के बीच बने मक़बरे ने आगे चलकर ताजमहल की कल्पना की नींव रखी। कहा जाता है कि अपने समय में इस मकबरे की तामीर में 15 लाख रुपये ख़र्च हुए थे। इसको बनाने के लिए फ़ारस के वास्तुकार गयास को बुलवाया गया था जिसने भारत में पहली बार फ़ारसी गुम्बद का इस्तेमाल किया। 1603 में हमीदा बानू बेगम के इंतकाल पर उन्हें भी यही दफ़नाया गया।

हुमांयू के मक़बरे के दक्षिण-पश्चिम कोने पर तीन बड़े मेहराबदार दरवाज़ों वाली दीवार बंद इमारत है जो पुराने जमाने से *अरब की सराय* के नाम से जानी जाती है। इसी इलाके की एक और ख़ास चीज़ है *बू हलीमा का बाग*। यह मालूम नहीं होता कि यह मोहतरमा कौन थीं लेकिन उनकी टूटी-फूटी क़ब्र इसी बाग में मौजूद है।

देहली को बनाने में जिस एक और शख़्सियत का बड़ा हाथ रहा है वो है शहज़ादी जहांआरा। आला दर्जे की शायरा, चित्रकार, लेखिका होने के साथ-साथ शाहजहां की इस बेटी ने शाहजहांनाबाद में बहुत सी खूबसूरत इमारतें बनवाई। सन् 1600 में इस शहजादी ने *चांदनी चौक* का नमूना सोचा और उस पर काम करवाया। 40 गज़ चौड़ी और 1520 गज़ लम्बी सड़क पेड़ों की छांव में बहती नहरों के साथ दुकानों और बाज़ार की कल्पना जहांआरा की थी। 1650 में वही एक बहुत बड़ा हमाम भी बनवाया। उसी साल एक दो मंज़िला सराय तामीर करवाई। शाही औरतों के लिए बगीचा बनवाया जो *बेगमबाग़* और बाद में *कम्पनी बाग़* कहलाया। मोइनुद्दीन चिश्ती की मुरीद जहांआरा ने अजमेर में उनकी दरगाह में संगमरमर का दालान बनवाया जो आज भी *बेगमी दालान* कहलाता है।

खुद शहज़ादी, देहली में निज़ामुद्दीन ऑलिया की दरगाह में खुले आसमान को ताकती एक सादी सी कब्र में सो रही हैं। उनकी ख्वाहिश के मुताबिक कब्र पर सिर्फ़ घास लगी है जहां आज भी गुलाब की पंखुड़ियां बिखेर दी जाती हैं।

गुलाब की ये पंखुड़ियां दिल्ली में मेरे भरोसे को ज़िंदा रखती हैं। जब तक यहां सादगी और अच्छाई को इज़्ज़त दी जाएगी हम सबके लिए उम्मीद बाकी है।

रख्शंदा जलील, *लेखक और शोधकर्ता हैं।*
वे हिन्दुस्तानी आवाज़ नाम की संस्था से भी जुड़ी हैं।
अंग्रेज़ी से अनुवाद- वीणा शिवपुरी